Golden Research Thoughts
Impact Factor : 2.2052(UIF)
Volume-3 | Issue-11 | May-2014

संस्कृत रूपकों में दलित एवं निष्पोषित वर्ग की समस्या (प्रारम्भ से लेकर आठवीं शताब्दी तक)

जहाँ आरा

शोधछात्रा, संस्कृत विभाग अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (ए.एम.यू.)
अलीगढ़ , उत्तर प्रदेश, भारत |

सारांश

दलित एवं निष्पेषित वर्ग की समस्या वर्तमान समय की ज्वलंत समस्याओं में से एक है परन्तु यहसमस्या न केवल वर्तमान समय की समस्या है अपितु यह प्राचीन काल से विद्यमान रही है। यह समस्या जात–पात, ऊँच–नीच, अस्पृश्यता आदि पर केन्द्रित रही है, जिसमें उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग को हेय दृष्टिसे देखते हैं, उसे शोषित एवं प्रताड़ित करते हैं। संस्कृत रूपकों में भी दलित वर्ग की समस्याएँ यत्र–तत्र प्राप्त हुयी हैं जिसे मैंने (प्रारम्भ से लेकर आठवी ं शताब्दी तक के रूपकों) का अध्ययन कर उसमें प्राप्त हुयी समस्याओंको अपने शोध ा पत्र में यथामति प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।कूट शब्द–दलित, निष्पेषित, अश्पृश्य, जाति, शूद्र।

प्रस्तावना

भारतीय समाज व्यवस्था ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आरै शूद्र इन चार वर्णों पर आधारित है, जो भारतीयसमाज में प्राचीनकाल से अब तक किसी न किसी रूप में चली आ रही है। इसी से जाति व्यवस्था का उद्गम
हुआ है। अधिकांश विद्वानों के अनुसार यह व्यवस्था प्रमुखतः कर्म पर आधारित थी। जिसमं ब्राह्मणों का कार्यज्ञानार्जन था, वह शिक्षण, पौरोहित्य, यज्ञादि अनुष्ठान का कार्य करता था। क्षत्रियों का कार्य अपने बाहबु ल सेसमाज की रक्षा करना था। वैश्य अन्न उत्पादन एवं पशुपालन इत्यादि कार्य करते थे और शूद्रों का कार्य इनकीसेवा करना था। किन्तु धीरे–धीरे इस व्यवस्था में विकृतियाँ आ गयीं। पहले 'कर्म' के आधार पर वर्ण–परिवर्तन हो जाता था। किन्तु जब से इसका आधार 'जन्म' बना तो यह वर्ण परिवर्तन असम्भव हो गया और यह बदलीहुयी व्यवस्था 'जाति' कहलायी। यही जाति व्यवस्था समाज के लिए घातक सिद्ध हो गयी। श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ के भाव हावी हाते चले गये और इनमें कोई अन्त्यज नीच और कोई अन्त्यज ऊँच बन गया। यह सर्वाधिक निकृष्ट और उपेक्षीत वर्ग था। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के अनुसार–

''ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत्।।''1 (यजुर्वेद 31/11)

अर्थात् ब्राह्मण की उत्पत्ति मुख से, क्षत्रिय की बाहु से वैश्य की जंघा से आरै शूद्रों की उत्पत्ति पैरों सेहुयी इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय समाज व्यवस्था मं` शूद्र सबसे निचले स्तर पर रहे हैं।भारत के वैदिककाल, उत्तरवैदिककाल (रामायण एवं महाभारतकाल) बौद्व एव ं जैनकाल में लिखे गयेविभिन्न धार्मिक ग्रन्थों के उद्धरणों से ज्ञात हाते ा है कि दलित एवं निर्ष्पे षत जातियों को शूद्र, अस्पृश्य, चांडालएव ं अद्विज आदि लग–अलग नामों से उद्बोधित किया गया और उद्बोधित कर इन्हें तिरस्कृत, घृणित एवंहेय दृष्टि से देखा गया। आगे चलकर एसे ही लोगों के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयागे किया गया है। दलितशब्द का सर्वप्रथम प्रयागे महाराष्ट्र में हुआ। अंग्रेज़ी शब्द में शेडयूल्डकास्ट, शेडयूल्ड ट्राईव आदि के लिए 'पददलित' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका श्रेय 'बाबा साहेब अम्बडेकर' को जाता है।

संस्कृत में दलित शब्द की व्युत्पत्ति

शब्दकल्पद्रुम् में संस्कृत का दलित शब्द दल + क्त2 प्रत्यय करके खण्डित एवं विक्षिप्त अर्थ मेंपरिभाषित किया गया है। संस्कृत साहित्य में इस 'दल्' धातु का व्यवहार दो अर्थों में किया गया है–विदारणऔर विकसन। विदारण अर्थात् फटने के अर्थ में, भवभूति ने उत्तररामचरित (1/28) में इसका प्रयोग अनेक बारकिया है, यथा 'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।3 भारवि ने किरातार्जुनीयम् (10/39) में 'न दलति निचये तथोत्पलानां[4] .....में इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया है। मल्लिनाथ ने भी अपनी टीका में 'दलति विकसति'लिखकर इस अर्थ को एकदम स्पष्ट कर दिया है। आप्टे के संस्कृत हिन्दी कोश में भी 'दलित' शब्द का अर्थ टूटा हुआ, फाड़ा हुआ, फटा हुआ, टुकड़े–टुकड़े हुआ आरै दूसरा अर्थ है खुला हुआ या फैलाया हुआ।[5]

हिन्दी में दलित शब्द का अर्थ

दल–विकसना, फटना, खण्डित होना, द्विधा होना, दल पूर्ण करना, विदारना, आधा करना, दल सैन्य
आदि।[6]

आधुनिक भारतीय साहित्य के सन्दर्भ में दलित की परिभाषा

यशवतं मनोहर के अनुसार ''शोषितों की जाति शोषित शोषण के कारण सामाजिक, आर्थिक एवंसारं कृतिक आदि अनेक कारणां ` से अमानवीयता की प्रगति में जो सबसे पिछड़ा रह गया हो और उसे सामाजिकवर्गों में सबसे दरू रखा गया हो।''डॉ0 माडें दलित की परिभाषा निम्न रूप से की है ''ऐसे व्यक्तियों के समूह को दलित कहा जानाचाहिए जिनका मनुष्य के रूप में जीने का अधिकार छिन गया हो, जिन पर जन्म से ही विशिष्ट प्रकार से जीवन व्यतीत करने की जर्बदस्ती की जाती है। मनुष्य के रूप में उसकी प्रतिष्ठा को नकारा गया है और जिन्हेंसम्मान की ज़िदगी बसर करने से वंचित रखा गया है, वे दलित हैं।''[8]

डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार ''दलित मूलतः वे हैं जो आर्यों द्वारा पराजित भारत के मूलवासी हैं। जिन्हेंआर्यों ने दास बनाकर अछूत घोषित कर दिया।''[9]

अतः दलित वर्ग का सामाजिक सन्दर्भों में अर्थ होगा वह जाति समुदाय जो उपेक्षित, तिरस्कृत,निष्पेषित, शोषित, दमनित, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा अन्य मानवीय अधिकारों से
वंचित रह गया हो आरै जिसे न्याय नही ं मिल सका हो।

अस्पृश्य और निष्पेषित जातियाँ इतिहास के हर दारै में सामाजिक विषमताओं और सामाजिक बहिष्कार,अस्पृश्यता, जातिभेद और दासता का शिकार रही हैं। संस्कृत रूपकों में प्रारम्भ से लेकर आठवीं शताब्दी तक के रूपकों का आलोकपात करने पर यह तथ्य उभर कर हमार` समक्ष आता है कि समाज की उन्नति में इनकी बहुआयामी योगदान में सशक्त भूमिका रही है फिर भी उन्हें विभिन्न प्रकार की सामाजिक अशक्तताओं एवं शोषण का सामना करना पडत़ा था। जो निम्नलिखित हैं–

अति निम्न सामाजिक परिस्थिति

अनुसूचित जातियों की श्रेणी में आने वाली अधिकांश जातियाँ जाति संरचना में शूद्रों की श्रेणी में रही हैं। इस कारण जाति स्तर में

इनका स्थान सबसे निम्न रहा है। जाति संरचना में इनकी निम्न प्रस्थिति को स्थायी एव ं अपरिवर्तनशील समझा जाता है। संस्कृत रूपकों में दलित, निष्पेषित वर्ग या शूद्र वर्ग में आने वाली प्रमुख जातियाँ उपजातियाँ निम्नलिखित हैं–नापित (नाई), चमार, कुम्भकार, शौण्डिक (सुरा विक्रेता) धीवर (मछलियों को बेचकर अपनी जीविका निर्वाह करने वाला), सूत (रथकार) गापे , लुब्धक (मृग का शिकार करने वाला, व्याध) रजक (धोबी) शबर (आदिवासी), चेट (दास), चाण्डाल इत्यादि।

सामाजिक शोषण

समाज में बहुत नीचा स्थान होने के कारण अनुसूचित जातियों को विभिन्न सामाजिक शोषण और अत्याचारों को सहना पड़ता था। लोग अपने उच्च पद का लाभ उठाकर निम्न वर्ग के लोगों को शोषित एवं पीडित करते थे। अभिज्ञानशाकुन्तलम् छठे अंक में धीवर का वर्णन हुआ है। यह शक्रावतार नामक गाँव में रहने वाला, मछलियों को पकड़ने के साधनों से अपने परिवार का पालन पोषण करता है। एक दिन उसे मछली के पेट से स्वर्ण अँगूठी की प्राप्ति होती है, वह उस अँगूठी को बेचने के लिए शहर जाता है, वहाँ सूचक और जानुक नामक दो नगर रक्षक जबकि वे भी निम्न जाति के हैं, फिर भी बिना अपराध सिद्ध हुए वे धीवर को दण्ड देने के लिए बन्दी बना लेते हैं। श्यालक उसकी अँगूठी को लेकर राजकुल में जाता है। अँगूठी को देखकर राजा उसे पारितोषिक देकर सम्मानित करता है। धीवर से राजपुरुष व राजसेवक पुरस्कार की आधी राशि माँगते हैं। धीवर पुरुष पारितोषिक की आधी राशि उन सबका ` देकर अपनी सरलता एवं कृतज्ञता का परिचय देता है।[10]

धीवर के नगर प्रवेश पर नगर रक्षक तथा सिपाही ने जो उसके साथ दुर्व्यवहार किया वह निम्नवर्ग के शोषण का चित्र है। एसे ा प्रतीत हाते ा है कि तत्कालीन समय में राजकीय सेवा में संलग्न लोग दुराचारी थे सीधे–सादे लोगों को शोषित एवं पीडित करते थे। निम्न वर्ग इनसे त्रस्त था।

मृच्छकटिक प्रकरण में चेट शकार का सेवक है। यद्यपि वह जाति से निम्न है किन्तु उसका चरित्र दया, करुणा, उदारता आदि दैवीय गुणों से युक्त है। वह शकार के अन्न पर पला बढ़ा है, अतः वह उसकी सेवा में सदा तत्पर रहता है। वह वसन्तसेना के प्रति कोमलभाव रखते हुए भी चाहता है कि वह शकार की काम की तृप्ति करे परन्तु जब शकार उसे वसन्तसेना को मारने के लिए प्रलोभन देता है तो वह स्त्री हत्या जैसे
कार्य को करने से मना कर देता है। यहाँ तक कि शकार उसे आभूषणों का भी प्रलोभन देता है परन्तु चेट की दृष्टि में स्त्री हत्या एक गर्हित कृत्य है। उसके मना करने पर शकार उसे महल की नवनिर्मितवीथी में बन्दी बना
लेता है।

स्थावरक का साहस विस्मयजनक है। जब चाण्डाल चारुदत्त को शूली पर ले जाते समय मृत्यु कीघोषण करते हैं तो वह निर्दोष चारुदत्त को बचाने के लिए महल की खिड़कियों से अपनी बेड़ियों सहित नीचे कूद पड़ता है।[11] उसे अपने मरने की तनिक भी परवाह नहीं होती क्योंकि कुलपुत्र रूपी विहगों के आश्रयीभतूचारुदत्त की प्राणरक्षा के निमित्त मरने से स्वर्ग की प्राप्ति होगी, ऐसा वह सोचता है। ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में शक्ति आरै सम्पन्न लोगों का बोलबाला था। निर्धन निर्दोष होने पर भी कितने ही तर्कवितर्क क्यों न दे परन्तु उसकी कोई नही ं सुनता था। स्थावरक नीचे कूदकर जब वसन्तसेना की हत्या कारहस्य विज्ञापित करता है साथ ही शकार के उस उत्काचे को भी उद्घोषित करता है परन्तु चाण्डाल उसकीबातां ` पर विश्वास नही ं करते तब उसे गहन पीड़ा होती है। उसे अपनी दासत्व की स्थिति पर तीव्र क्लेश होता है कि उसके सत्य कथन पर भी विश्वास नहीं किया जा रहा क्योंकि वह एक दास है।

उत्तररामचरित के दुसरे अंक में शम्बूक वध का प्रसंग शक्ति एवं ऐश्वर्य सम्पन्न प्रतिष्ठा प्राप्त लोगों की अपराधी मनोवृत्ति को उजागर करता है। अपने स्वार्थ एवं पद लिप्सा के लिए निर्दोष व्यक्ति की हत्या भी इस वर्ग की दृष्टि में उचित कार्य है। शम्बकू एक शूद्र तपस्वी है। वह कर्म से एक उच्च मुनि है। अपनी घोर तपस्या से वह ब्राह्मण समाज को हिला देता है। ब्राह्मण

बालक को जीवित करने के लिए, ब्राह्मण, राजा राम के द्वारा उसका वध करवाते हैं। राम शम्बकू वध करते हैं।[12] परन्तु मरते ही शम्बूक एक दिव्य देह धारण कर लेता है। वह दिव्य दहे धारण करते ही राम को सिर झुकाकर प्रणाम करता है आरै कहता है कि यमराज से भी अभयदान लेकर आपके दण्ड धारण करने पर आपकी कृपा से वह ब्राह्मण बालक जीवित हो उठा, मेरी यह अलौकिक शोभा हो गयी। वास्तव में सत्संग से उत्पन्न मरण भी प्राणियों का उद्धार कर देते हैं। यह सत्य है कि शम्बूक वध के लिए राम के प्रति आकाशवाणी गुंजित होती है। परन्तु दसू री ओर यदि ध्यान दें तो घोतित हातेा है कि शम्बूक वध में निश्चय ही उच्चवर्ग का स्वार्थ निहित है। वरना तप से न कोई आज तक मरा है और न तप करने वाले को मारने से कोई जीवित हुआ है? मृत्यु तो अवश्यम्भावी है।

अस्पृश्यता की समस्या

अस्पृश्यता, अनुसूचित जातियों की समाजिक समस्या एवं शोषण का एक ज्वलंत उदाहरण है। जाति व्यवस्था में सामाजिक दूरी और पवित्रता पर विशेष ा बल दिया जाता है। जाति जितनी ऊँची होती है, उसके पवित्र होने की संभावना उतनी ही अधिक होती है, इसके विपरीत जाति जितनी नीची होती है, उसमें अपवित्र करने की शक्ति अधिक प्रबल होती है। इसी भावना ने जाति व्यवस्था में अस्पृश्यता को जन्म दिया।

तत्कालीन समय में चतुवर्गों के अतिरिक्त कुछ वर्ग ऐसे थे जो अन्त्यज कहलाये। वे अस्पृश्य होने के कारण नगर से बाहर प्रच्छन्न रूप में रहते थे। अविमारक नाटक में ब्रह्मर्षि के शाप के कारण अविमारक को एक वर्ष तक श्वपाक रहने का शाप मिलता है। सौवीरराज के अनुनय विनय करने पर ब्रहर्षि कहते हैं–श्वपाक के रूप मं` छिपकर किसी तरह वर्ष बिताओ।[13] ये कुलविकल आरै कुलभ्रंश होत` थे अर्थात् इनका अपना कोई कुल नहीं होता था। समाज में चाण्डाल का स्थान निम्न था। उनकी सबसे नीच वृत्ति या आजीविका थी। दोषी के वध से पूर्व चाण्डालों का कर्म था कि वे नगरवासियों के सामने घोषणा स्थल पर ढोल पीटकर अपराधी के अपराध की घोषणा करें जिससे मनुष्य उनके स्पर्श मार्ग से दूर हट जाएँ। मृच्छकटिक प्रकरण में चाण्डाल चारुदत्त को शूली पर ले जाते समय ढोल पीटकर घोषणा करते हैं।[14]

धार्मिक एवं सामाजिक समस्या

अस्पृश्य होने के कारण ऊँची जाति के लागे इन्हे ं धार्मिक कृत्यों में भाग लेने नहीं देते थे। द्विज की सेवा करना ही इनका वास्तविक धर्म था। ब्राह्मणादि के सदृश उनके जातकर्मादि षोडश संस्कार नही ं होते थे |इन्हें वदे मत्रं ों के पठन–पाठन का अधिकार नहीं था। प्रतिमा नाटक में भरत के वचन से ज्ञात होता है कि देवार्चन के समय शूद्र वेदमंत्रों का उच्चारण किये बिना ही देवाताओं को प्रमाण करते थे।[15] द्विज शूद्र को अस्पृश्य सा समझते थे। शूद्रों का सान्निध्य वे कभी स्वीकार नहीं करते थे। पंचरात्र नाटक (1/6) में प्रथम ब्राह्मण कहता है–''चैत्याग्निर्लौकिकाग्निं द्विज इव वृषलं पार्श्वे न सहते''[16] जबकि शूद्र कुलीन व्यक्तियों को समादरपूर्वक अभिभाषित करते थे।[17] मृच्छकटिक में विदूषक मं` ब्राह्मणत्व की जाग्रत हुयी भावना देखने को मिलती है। चेट जब विदूषक चारुदत्त के पैर धोने के लिए कहता है तब उसको क्रोध आ जाता है विदूषक उससे क्रोधपूर्वक कहता है यह चेट दासी का पुत्र होकर पानी ग्रहण कर और मझु ब्राह्मण से परै धुलवाता है। वेदों के अध्ययन का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही था। उत्तररामचरित में शूद्रकों के तप करने पर ब्राह्मण उसे महान अनर्थ मानते हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि इतिहास का ऐसा कोई दौर नही ं जिसमें दलित एवं निष्पेषित वर्ग को शोषित एवं पीडित़ नहीं किया गया हा। उपर्युक्त उद्धरणों पर यदि ध्यान दें तो यही घोतित हाते ा है कि उच्च वर्ग के लागे ऐसे वर्ग को कभी निम्न वर्ग का साचे कर तो कभी अस्पृश्यता के नाम पर तो कभी दरिद्र समझकर प्रताडित़ करता था। वर्तमान समय में यह समस्या और अधिक प्रबल हो गयी है। जबकि अस्पृश्यता निवारण एवं पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए अखिल भारतीय वर्ग संघ, अखिल

भारतीय दलित वर्ग फैडरेशन तथा हरिजन सेवक संघ आदि संस्थाएँ कार्यरत हैं फिर भी कहीं न कहीं दलित वर्ग अपने आपको दला हुआ और कुचला हुआ पाता है। जब तक समस्त भारतीय नागरिक अपने विचारों में परिवर्तन नही ं लायेंगे तब तक इस समस्या का समाधान नही ं हो सकता और इस समस्या का समाधान तभी होगा जब सभी मनुष्यों में इस भावना का उदय हो कि हम सब एक ही ईश्वर की संतान हैं। ऊँच–नीच, जात–पात एवं अस्पृश्यता की भावना हमारे द्वारा बनाई गयी है न कि ईश्वर के द्वारा अतः इस निम्न कोटि की भावना को हम सब को मिलकर समाप्त करना हागे । आरै यह तभी होगा जब हमारे अन्दर भाईचारे की भावना जाग्रत हो।

सन्दर्भ

1. ''शुक्ल यजुर्वेदिनाम् आह्निक कर्म्म सूत्रावली : शिवदत्त शर्मा, बम्बई, 1950
2. शब्दकल्पद्रुम् : ले राधाकान्त देव, कलकत्ता।
3. उत्तररामचरितम् : व्या0 रमाकान्त त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2012
4. किरातार्जुनीयम् : अनु0 कैशर बहादुर, रत्ना पुस्तक भण्डार, नेपाल, 1974
5. संस्कृत हिन्दी शब्दकोष : वामन शिवराम आप्टे, अशोक प्रकाश्न, 2013, पृ0 440
6. हिन्दी आरै मराठी दलित साहित्य का एक तुलनात्मक अध्ययनः डॉ0 सुरशे । मारुति राव मूले, नव भारत
प्रकाशन, दिल्ली 2007, पृ0 79
7. वही, पृ0 22
8. वही, पृ0 24
9. वही, पृ0 19
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ, पृ0 6/98–100
11. मृच्छाकटिकम् : व्या0 डॉ0 श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, 2010, पृ0 314
12. उत्तररामचरितम् व्या0 रमाकान्त त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2012, पृ0 106–107
13. अविमारक : व्या0 आचार्य श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2000, 6/8
14. मृच्छकटिकम् : व्या0 डॉ0 श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार मेरठ 10/पृ0 305
15 प्रतिमा नाटक : व्या0 आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011, 3/5
16. पंचरात्र : व्या0 श्रीरामचन्द्र मिर चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी 2002
17. वही, 2/47